

लोकाचार

(१)

एकोनोमिकल प्रेस के सुविशाल आँगन में लाला धनीराम भल्ला बैठे लेखा-पत्रा देख रहे थे, और मन में प्रसन्न हो रहे थे। इस समय उनका मुँह अनार के दाने के समान लाल हो रहा था, होंठों पर मुस्कराहट इस प्रकार खेलती थी जिस प्रकार लाल बादलों में बिजली। आज से दो वर्ष पहले जब उन्होंने यह काम आरम्भ किया था, उनका मन आशा और निराशा से दोलायित हो रहा था, जैसे नौका जल के प्रवाह में हिचकोले खाने लगती है। उन दिनों उनकी स्टेशनरी की दूकान थी। उससे वे अपना निर्वाह करते थे, उसी से थोड़ा थोड़ा बचाते जाते थे। यहाँ तक कि उनके पास तीन हज़ार रुपया जमा हो गया। मित्रों ने सलाह दी, रोहतक में प्रिंटिंग प्रेस की अत्यन्त आवश्यकता है, सारे ज़िले का काम देहली जाता है। यदि साहस करके एक छोटा सा प्रेस खड़ा कर दो तो दिनों में बन जाओगे। धनीराम की इच्छा न थी कि इस जंजाल में फँसें, परन्तु मित्रों के आग्रह ने विवश कर दिया। दूकान बन्द करके प्रेस खोल दिया। ये बड़े परिश्रमी और मितव्ययी थे, आरम्भ ही में लाभ होने लगा। परन्तु उनका लाभ से भी बढ़ कर खयाल अपने प्रेस की ख्याति का था। प्रायः कहा करते कि काम की सफ़ाई और उत्तमता ही सबसे बड़ा विज्ञापन

हे । इस सफ़ाई के लिए उन्होंने कई बार छपे हुए फ़ार्म रद्दी कर दिये । कई बार लिखी हुई कारियाँ फाड़ डालीं, परन्तु प्रेस की ख्याति पर कोई कलंक न लगने दिया । परिणाम यह हुआ कि प्रेस दूर दूर तक प्रसिद्ध हो गया । धनीराम की आय बढ़ने पर उन्हें मकान की आवश्यकता पड़ी । धनीराम के पास पाँच सहस्र रुपया था, उनकी पत्नी के पास दो सहस्र रुपये के आभूषण थे । सब रुपया मकान पर लगा दिया, परन्तु फिर भी काम न चला । पाँच सहस्र रुपया उधार लेना पड़ा । मकान बना, और बहुत-बढ़िया बना । लाला धनीराम अपना प्रेस उसी में ले आये । और एक वर्ष के अन्दर अन्दर ऋण चुका दिया । आज वही दिन था । धनीराम के हृदय में प्रसन्नता थी, नेत्रों में हँसी । कभी मकान को देखते, कभी प्रेस को, और फूले न समाते । सोचते, कैसे शुभ लग्न में इस कार्य में हाथ लगाया था, पौ वारह हो गये, नहीं तो इसी प्रेस के फेर में सैकड़ों का दीवाला निकल गया । मैं किस योग्य हूँ, यह सब परमात्मा की कृपा है । घर में एक स्त्री है, दो विधवा बहिनें, उनका पालन भी उसी को करना है । यह बसीला बन गया है, चार दिन सुख से कट जायँगे, नहीं तो कष्ट से निर्वाह होता था । वे आनन्द में मतवाले होकर झमने लगे । इस समय साँझ हो चली थी ।

कुछ देर बाद उन्होंने कोट पहना । वृट के तस्मे बाँधे और छड़ी हाथ में लेकर बाहर जाने को तैयार हुए, कि चपरासी ने आकर कहा “सेठ हरद्वारीलाल आये हैं ।”

(२)

लाला धनीराम चौक पड़े । सेठ हरद्वारीलाल रोहतक के सबसे बड़े रईस थे, युवावस्था, तीस वर्ष की आयु । नगर के बाहर कचहरी रोड पर उनकी कोठी थी । वे केवल धनाढ्य ही न थे, उनका हृदय सज्जनता की सम्पत्ति से भी भर-पूर था । वे निर्धन जनों की सहायता करना अपना धर्म समझते थे । बीसियों विधवाओं को मासिक देते थे । मुसाफ़िरों के सुख के लिए स्टेशन के पास पचास सहस्र रुपये के खर्च से एक सराय बनवाई थी । और इतना ही नहीं, सभा-सोसायटियों को भी भाये दिन कुछ न कुछ दान करते ही रहते थे ।

उन्होंने किसी को खाली हाथ वापस नहीं भेजा। इसे वे अपने वंश के गौरव से गिरा हुआ समझते थे।

परन्तु ऐसा करते हुए भी वे अपटुडेट और फैसनेबल थे। दिन में चार चार बार पोशाक बदलते, अँगरेज़ी टोप पहनते। देहली में कोई थियेटर आता तो उड़कर पहुँचते। उनकी कोठी भी सोलहो आना पश्चिमी सभ्यता के रंग में रंगी हुई थी, वही रविशों, वही रेशमी पर्दे, वही गद्देदार कुर्सियाँ, वही भारी और लम्बी-चौड़ी मेज़ें, वही चीनी की रकाबियाँ, वही अँगरेज़ी के समाचार-पत्र, फर्श पर दरियाँ, दीवारों के साथ शैक्सपियर के नाटकों के चित्र। यह सब देखकर किसी को कल्पना न हो सकती थी कि यह किसी भारतीय की कोठी है। और यदि कोई कोर-कसर रह जाती तो उन्हें बेहरे और दूसरे नौकर-चाकर पूरा कर देते थे। वे सेठ साहब को “साहब” कह कर पुकारते थे। उनकी मोटर जिधर से निकल जाती, लोग चकित रह जाते।

लाला धनीराम ने छड़ी मेज़ के साथ रख दी, और चपरासी को कुर्सी लाने की आज्ञा देकर सेठ साहब की भगवानी को निकले। इस समय उनका कलेजा धड़क रहा था। सेठ साहब ने उनको देखा तो अपनी मोटर से उतर आये, और मुस्करा कर बोले “मेरा विचार न था कि आप इस समय मिलेंगे। नहीं तो सीधा अन्दर आ जाता।”

लाला धनीराम ने कहा “आपका विचार ठीक है, मैं इस समय प्रायः बाहर घूमने निकल जाता हूँ। आज योँही विलम्ब हो गया है।”

“तो मैं आपकी सैर में बाधक हुआ हूँ। जान पड़ता है, आप जाने को तैयार थे।”

“तैयार तो था; परन्तु आप बाधक नहीं हुए।”

सेठ हरद्वारोलाल के यहाँ से छपवाई का सहस्रों रुपये का काम निकला करता था। वह सब एकोनोमिकल प्रेस में आया करता था। इससे लाला धनीराम और सेठ साहब का परिचय हो गया था, परन्तु प्रेस में आने का यह पहला अवसर था। उन्होंने इमारत को देखा। एक ओर दफ्तर का कमरा था, साथ स्नानागार, सामने पक्का कूआँ। एक ओर मैशिनें, दूसरी ओर टाइप की रैकें, साथ कातिबों का स्थान, मध्य में विशाल आँगन, हवादार ह्योढ़ी, सुन्दर पक्के

बराण्डे। सेठ साहब ने कहा “बहुत अच्छी इमारत है, देखकर चित्त प्रसन्न हो गया।”

लाला धनीराम ने उत्तर दिया “किराये के मकान में कारोबार करते हुए मन में संतोष न था। जैसी भली-बुरी हो सकी अपनी जगह बना ली है। और यह स्थान पहले मकान से बुरा नहीं।”

इस बीच में दोनों कुर्सियों पर बैठ चुके थे। नौकर ने हुक्का भर कर सामने रखा। सेठ साहब पीने लगे, और धूँआँ छोड़ कर बोले “चिरकाल से आपका प्रेस देखने का इच्छा थी, आज पूरी हो गई।”

इतने में नौकर ने लैमोनेड की एक बोतल खोलकर सामने रख दी।

लाला धनीराम ने कहा “सुना था, कभी कभी च्यूँटी के यहाँ स्वयं भगवान् आ जाते हैं, आज आँखों से देख लिया।”

सेठ साहब ने लैमोनेड का ग्लास हाथ में लेकर कहा “आपने योंही कष्ट उठाया। इसकी कोई आवश्यकता न थी।”

“मैं बहुत लज्जित हूँ। आपका कुछ सत्कार नहीं कर सका। गर्मी के दिनों में जल-मात्र ही पर बस करनी पड़ती है।”

एकाएक सेठ साहब ने जेब से एक नोटिस निकाला, और उसे लाला धनीराम के हाथ में देखकर बोले “यह आपने देखा, आज रात देहली में ऐलफ़्रेड कंपनी महाभारत का नाटक खेलनेवाली है। लोग बड़ी प्रशंसा करते हैं। मेरा विचार है, देख आऊँ। यदि आप भी चले तो आनन्द आ जाये।”

लाला धनीराम को नाटक का शौक न था। अपनी इच्छा से आज तक उन्होंने एक भी नाटक न देखा था, परन्तु सेठ हरद्वारीलाल की बात न टाल सके। हँस कर बोले—“बहुत अच्छा, जैसी आज्ञा हो।”

उस रात लाला धनीराम ने पहली बार सैकंड क्लास में यात्रा की। यद्यपि किराया सेठ साहब ने अपनी जेब से दिया था, तो भी उनका चित्त दुखी था, कि रेलवे को अधिक पैसे क्यों दिये। परन्तु गाड़ी में बैठे तो यह पछतावा न रहा। खुला स्थान, सुखदायक गद्दे, बिजली का प्रकाश, बिजली का पंखा। ह्यूँदे दर्जे के लोग दबक दबका कर बैठे थे। कई बेचारे खड़े थे, और कई ऐसे भी थे जिनको खड़ा होने के लिए भी स्थान

न था। उनकी अवस्था देखकर लाला धनीराम को अपनी अवस्था का अनुभव हुआ। अभिमान ने सिर ऊँचा कर दिया। उनकी ओर करुणा-दृष्टि से देखते हुए गौरव के साथ अपनी सीट पर जा बैठे। परन्तु हाथ-पाँव काँप रहे थे, मानों किसी परीक्षा में बैठे हों। रह रह कर सोचते थे, सेठ साहब मुझे कहीं ओछा न समझ लें। यदि ऐसा हुआ तो इनके हृदय में जो मेरा सम्मान है, वह नष्ट हो जायेगा। इस भय से उन्होंने एक समाचार-पत्र हाथ में लिया, और ऐसा प्रकट किया, मानों उसे पढ़ने में लीन हैं। गाड़ी चल पड़ी।

रास्ते में सेठ साहब से और लाला धनीराम से कई विषयों पर बात-चीत होने लगी। लाला धनीराम लौकिक ज्ञान के भण्डार थे। प्रत्येक विषय में उन्होंने अपनी अभिज्ञता के ऐसे प्रमाण दिये कि सेठ साहब की आँखें खुल गईं। उनको इस समय तक यही पता था कि लाला धनीराम प्रेस के काम में ही निपुण हैं, परन्तु अब जाना कि उनका लौकिक ज्ञान प्रत्येक विषय में बहुत बढ़ा-चढ़ा है। वह लाला धनीराम पर लट्टू हो गये, और जोश से बोले, “आप तो छिपे रुस्तम निकले, मुझे पता न था कि पत्थरों में आप जैसे हीरे भी छिपे पड़े हैं। अब तक आपसे परिचय न था, परन्तु आज मुझे आपके गुणों का ज्ञान हो गया है, अब पीछा न छोड़ूँगा। आप चाहे लाख हीले करें, परन्तु आपको प्रतिज्ञा करनी होगी कि मेरे यहाँ आते-जाते रहेंगे। अन्यथा आपके प्रेस में धरना मार कर बैठ जाऊँगा।”

लाला धनीराम ने जब यह प्रशंसा के शब्द सुने तो पानी पानी हो गये। हृदय आनन्द के झूले में झूलने लगा, परन्तु प्रकट में कहा “यह आपका बड़प्पन है।”

“बड़प्पन ही सही, परन्तु आप मुझे मिलते रहेंगे?”

“मैं न कैसे कह सकता हूँ, मिलता रहूँगा।”

(३)

लाला धनीराम के जीवन में भारी परिवर्तन हुआ। अब वे पहले के-से परिश्रमी और सीधे-सादे न रहे, नित्य नये नये सूट तैयार होने लगे। सेठ साहब

के यहाँ आना-जाना आरम्भ हुआ तो इस सचाई का ज्ञान हुआ, कि तबक-भड़क और भोग-विलास जीवन का एक आवश्यक अंग है। नाटक देखकर उनको ऐसा प्रतीत होने लगा मानों मन मतवाला हो गया है। उस दिन के पश्चात् स्वयं भी नाटक के एक्टरों की तरह दिखावा करने लगे, जो कंगाल होते हुए भी राजाओं का स्वाँग भरते हैं, जिनके हृदय रोने हैं, परन्तु होंठ मुस्कराते हैं, जो वह कहते हैं जो उनके मन में नहीं होता। लाला धनीराम भी अपने आपको अपनी स्थिति से बड़ा चढ़ा कर दिखाने लगे। सारी आयु की सादगी दिखावे की सुन्दरता का एक क्षाँका भी न सह सकी। जिसे दृढ़ दुर्ग समझा था, वह शत्रु के पहले आक्रमण से ही ढेर हो गया। लाला धनीराम पर किसी ने जादू टोना नहीं किया, परन्तु उनको दिखावे की मदिरा ने उन्मत्त कर दिया। इधर साय-झाल होता, उधर नया सूट पहन कर सेठ साहब के यहाँ चले जाते। नशा बढ़ता जाता, जिस प्रकार भाँग के अमल को मिठाई दुगुना कर देती है। सेठ साहब के यहाँ मोटर, फ्रिटन, ताँगे सब कुछ थे। प्रायः लाला धनीराम के लौटते समय गाड़ी या फ्रिटन भेज देते। इससे उनको अपना अपमान-सा प्रतीत हुआ। दूसरे ही महीने अपना ताँगा बनवा लिया। सेठ साहब के यहाँ जाते तो ताँगा बाहर खड़ा रहता। इससे उनका हृदय गद्गद हो जाता। अब तक उनकी स्त्री बहुत सीधी-सादी रहती थी। सेठ साहब के यहाँ आने-जाने का यह परिणाम हुआ कि लाला धनीराम की दृष्टि उस ओर भी गई। एक दिन बोले—‘सुशीला ! तुमसे कई बार कहा है, तुम साफ-सुथरी रहा करो। जब मैं कमाता हूँ, तो क्या कारण है कि तुम बढ़िया कपड़े न पहनो ? परमात्मा ने दिया है तो इसका सम्यक् उपयोग करो। तुम्हें मलिन वस्त्रों में देखकर मेरा जी जल जाता है, परन्तु तुम तनिक भी परवा नहीं करतीं। मैं यह नहीं कहता कि तुम व्यर्थ रुपया खर्चों, परन्तु और नहीं तो इतना तो करो कि लोग मुझे कदर्य न समझें। मैं अब पहला दुकानदार नहीं रहा, एक कारखाने का मालिक हूँ, जिसकी धूम देहली तक मर्चा हुई है। सेठ हरद्वारालाल जैसा आदमी उठ कर मेरे साथ हाथ मिलाता है। अदालत में जाता हूँ तो चकील कुंसियाँ छोड़ देते हैं। बाजार में निकलता हूँ तो लोग उँगलियाँ उठाते हैं। इस अवस्था में तनिक विचार करो, यदि

तुम ऐसे वस्त्र पहन कर बाजार से निकल जाओ तो मेरी कितनी निन्दा होगी। मेरी बातों को ज़रा कान दे कर सुनो। अपनी अवस्था से सचेत हो, और जो मैं कहता हूँ उसके अनुसार चलो।”

सुशीला सादगी और सुशीलता को एक ही बात समझती थी। उसके विचार में स्त्री के लिए भड़कीले वस्त्र पहनना पाप था। वह इसे वेश्यापन समझती थी। पति की बातें सुनकर उसके हृदय में बाण-सा लगा, नेत्रों में आँसू आ गये। उसने भर्राये हुए स्वर से कहा “मेरा हृदय तुम्हें अच्छे वस्त्र पहने देखकर प्रफुल्लित हो जाता है, परन्तु मुझे यों ही रहने दो। भड़कीली वस्त्र पहन कर मैं क्या कहूँगी ?”

यदि यही शब्द सुशीला पहले कहती तो धनीराम उसे गले लगा लेते, परन्तु अब वह अवस्था न थी। वे सेठ साहब के यहाँ स्त्रियों को तितलियाँ की नाईं सर्जी हुई देख आये थे। उनके हृदय में लोगों के दिखावे के साँप का विष चढ़ चुका था। यह मीठे शब्द उनको बहुत कड़वे लगे, जिस प्रकार ज्वर के रोगी को मिस्री कड़वाँ लगती है। तथापि सँभल कर बोले—“नहीं सुशीला! तुमने स्त्री-जाति को अत्यन्त नीच समझ रखा है। परन्तु वास्तव में यह बात नहीं। स्त्री पुरुष के पाँव की जूती नहीं, वह उसकी सेवा के लिए नहीं उत्पन्न की गई है, प्रत्युत इसलिए कि उसके साथ साथ चलकर संसार के सुख-भोग करे और आनन्द का जीवन बिताये। प्रकृति ने नारी को पुरुष के अँधेरे दिनों को प्रकाशमय और दुःखमय क्षणों को आनन्दमय बनाने के लिए उत्पन्न किया है। संसार के बगीचे में वह बुलबुल के समान है। परन्तु तुम अभी वही पुराने ढर्रे के विचारों को लिये बैठी हो। यह विचार तुम्हें अब छोड़ने होंगे। कल मिस्टर हरद्वारालाल ने मुझसे तुम्हें साथ लाने को कहा था। तुमसे क्या कहूँ, मुझ पर घड़ों पानी पड़ गया। कई बार कहा कि वह अनपढ़ है, तुम्हारी संगति के योग्य नहीं। परन्तु उन्होंने नहीं माना। अब किसी दिन तुम्हें साथ ले जाना होगा। चल कर देखना, उनके घर की स्त्रियाँ कैसी सभ्य हैं। पहनने में, खाने-पीने में, बातचीत करने में, तुम्हारा और उनका आकाश-पाताल का अन्तर है। तुम उनमें जाकर ऐसी मालूम होगी जैसे हंसों में कौआ। वहाँ चल कर तुम्हें पता चलेगा कि जीवन की उच्चाकांक्षा कैसी सुन्दर है, इन्द्रधनुष की

नाई' चित्र-विचित्र और मनोहर। देखकर मन-मयूर नाचने लगता है। पर मुझे डर है कि कहीं तुम्हारी बदौलत मुझे लज्जित न होना पड़े।”

(४)

इन वचनों से सुशीला के हृदय का सोया हुआ अभिमान जाग उठा। “तुम उनमें जाकर ऐसी मालूम होगी जैसे हंसों में कौआ” इन शब्दों ने उस पर वह कुछ किया जो सारी वक्तृता न कर सकी। स्त्री अपना अपमान सह सकती है, परन्तु उसे दूसरे के मुँह से सुन नहीं सकती। और विशेषकर उस अवस्था में जब कि उसकी तुलना दूसरी स्त्रियों के गुणों से की जाय, और वह भी उसके पति के मुख से। सुशीला ने दृढ़ निश्चय कर लिया कि अब सादगी और त्याग का जीवन व्यतीत न करूँगी।

अब से उसके भी धनाढ्य स्त्रियों की नाई' ऐश्वर्य के दिन कटने लगे। सायंकाल को ताँगे में बैठ कर बज़ाज़ की दुकान पर गई और साढ़े तीन सौ का कपड़ा ले आई। परन्तु मन न भरा। स्त्री-जाति का स्वभाव है कि वह जिधर झुकती है, पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है। मध्यम अवस्था में रहना उसके स्वभाव के विरुद्ध है। सुशीला भी एक ही दिन में मध्यम अवस्था को पार कर गई, और बनाव-शृंगार की चोटी पर पहुँच गई।

वस्त्रों के पश्चात् आभूषणों की माँग हुई। धनीराम ने उसको सहर्ष पूरा किया। दो मास के पश्चात् एक दिन सुशीला ने कहा “तुमने कहा था, मिसिज हरद्वारीलाल मुझे बुलाती हैं, किसी दिन ले चलो न।” लाला धनीराम के रोम रोम में आनन्द की लहर दौड़ गई। उनकी हार्दिक इच्छा थी कि सेठ हरद्वारीलाल के घरवालों पर उनकी स्त्री का सिकंदा बैठ जाय। वह भवसर अब सामने था। उनकी स्त्री अब पहली स्त्री न थी, अब वह उदार-चित्त अमीर स्त्री बन गई थी, सफाई-पसन्द और सलीके-वाली। वस्त्र पर ज़रा-सा दाग़ लग जाता तो उनका मन उसमें घृणा करने लगता, और जब तक उसे बदल न डालती, तब तक चैन न आता। इससे धनीराम फूले न समाते। वे रुपयें-पैसे को कंकर समझने लगे थे।

उन्होंने सुशीला को गले लगा लिया, और कहा “तुमने मेरी लाज रक्ष ली।”

सार्थकाल लाला धनीराम सुशीला को साथ लेकर सेठ साहब के यहाँ गये । मिसिज़ हरद्वारीलाल फाटक पर खड़ी थीं । उन्होंने जाकर सुशीला का हाथ थाम लिया, और कहा “वाह बहन ! खूब रास्ता दिखाया । मैं तो भाईजी से रोज़ तगादा करते करते थक गई थी । अब तो मैंने समझ लिया था कि तुम हमें अपने योग्य नहीं समझतीं । आज कैसे भूल पड़ीं ?”

सुशीला अब बातचीत का ढंग सोख गई थी, बोली, “बहन ! जी तड़पता था, परन्तु घर के काम-धंधे रोकते थे । अच्छा, आज आ ही गई ।”

रात्रि को लौटते समय सुशीला ने पति से कहा—“जी चाहता है, एक दिन इनको अपने यहाँ आमन्त्रित करूँ ।”

धनीराम ने उत्तर दिया—“यह भी जानती हो, इनको आमन्त्रित करने के क्या अर्थ हैं ?”

“नहीं ।”

“कम से कम पाँच सौ रुपया ।”

“पाँच सौ रुपया ? वह कैसे ?”

“घर सजाना होगा । पर्दे लटकाने होंगे । कुर्सियाँ, मेज़, दरियाँ मँगवानी होंगी । खान-पान को सामग्री इससे अलग रही । यदि इतना खर्च कर सकती हो, तो निमन्त्रण दे दो । नहीं चुप रहो ।”

“चुप रहना कठिन है । तुम रोज़ रोज़ उनके यहाँ जाते रहते हो । इस बात को कई मास हो गये हैं, इस बीच मैं तुमने उनको एक दिन भी अपने यहाँ नहीं बुलाया । ज़रा सोचो तो सही, वे मन में क्या कहते होंगे । मुझे तो आज बड़ी लज्जा आई । दूसरी बार जाऊँगी तो उनको आमन्त्रित किये बिना न आऊँगी ।”

लाला धनीराम कुछ देर तक चुप रहे, कदाचित् सोचते होंगे कि बैंक में रुपया है या नहीं । इसके पश्चात् कुछ सोच में पड़ गये । दीर्घदर्शिता और लोकाचार में संग्राम आरम्भ हो रहा था । सुशीला ने कहा “तो फिर संसार में किसी के साथ बर्तना भी है वा नहीं । रुपया खर्च किये बिना तो काम नहीं चलता । धनाढ्य पुरुष हैं, अपने बन जायेंगे तो किसी दिन काम आयेंगे । इसी

विचार से मैंने कहा था कि उनको एक-आध बार अपने यहाँ बुलाऊँ, तो तनिक संकोच खल जाये। आगे जैसी आपकी इच्छा।”

लाला धनीराम सिंगार पी रहे थे। यह सेठ साहब की संगति का फल था, नहीं तो उन्होंने कभी इसे लुआ तक न था। धुँआ छोड़ते हुए बोले “मैं मना नहीं करता। तुम शौक से उनको निमन्त्रित करो, सामान आ जायगा।”

“तो कब तक पत्र भेज दूँ ?”

“जब तुम्हारा जी चाहे।”

“मैं चाहती हूँ, यह काम अठवारे के अन्दर अन्दर हो जाय।”

“कोई हर्ज नहीं।”

दूसरे दिन से पति-पत्नी दोनों तैयारियाँ करने लगे। धनीराम सामान खरीदते थे, सुशीला घर सजाती थी। इन तैयारियों में पन्द्रह दिन निकल गये। कोई विवाह न था, कोई त्योहार न था, कोई उत्सव न था। ऐमे अवसरों पर बहुत काम होता है। परन्तु यहाँ इससे भी बढ़-चढ़ कर काम था। ऐसा जान पड़ता था मानों उनके यहाँ बारात आनेवाली है। उनको खाने-पाने की सुध न थी। वे मैशान की नाईं काम करते थे; जैसे वे नौकर हों, और उनका बड़ा अफ़सर आने आला हो। डर यह था कि कोई त्रुटि न रह जाय। मिसिज़ हरद्वारीलाल के सम्मुख यह गर्वशील सिर झुक न जाय। वे घर में पाँव रखते ही चौंक उठें। उनके मुख से वाह-वाह के शब्द निकल आये। तेजप्रताप से उनका हृदय हिल जाय और उनको पता लग जाय कि यह भी किसी से कम नहीं हैं।

(५)

पन्द्रहवें दिन सेठ और मिसिज़ हरद्वारीलाल का भोज था। उस दिन धनीराम और सुशीला चार बजे उठे। मकान साफ़ किया, आँगन में छिड़काव कराया। द्वार पर शुभागमन और “Welcome” के मोटो लगाये। दीवारों पर फुलवारियाँ सजाईं। प्रत्येक वस्तु यथोचित स्थान पर हो, इसका ऐसा खयाल था, कि देखनेवाला सजानेवालों की प्रशंसा किये बिना न रह सके। जब सेठ साहब और मिसिज़ हरद्वारीलाल के आने का समय हुआ तो पति-पत्नी दोनों द्वार पर जा खड़े हुए, मानों उनके भाग्य का निपटारा होनेवाला है। इतने में

मोटर द्वार पर आकर रुकी। दोनों के हृदय धड़कने लगे। एक हलकी सी मुस्कराहट और कुछ वाह वाह के शब्द, यही उनके परिश्रम और खर्च का मूल्य था। क्या यह उन्हें मिलेगा ?

सेठ साहब और मिसिज़ हरद्वारीलाल मोटर से उतरे, और चौंक उठे। क्या यहाँ कोई बागत आनेवाली है ? सजावट ने इस विचार को पक्का कर दिया, परन्तु धनीराम और सुशीला के मुख से कोई ऐसी बात प्रकट न होती थी। उन्होंने बहुत ही उत्साह के साथ आगे बढ़ कर अपने अतिथियों का स्वागत किया, और हाथों-हाथों भीतर ले गये। धनीराम ने अपनी परिस्थिति साधारण रखी थी जैसे उनका रहनसहन ही ऐसा है, उसमें कोई विशेषता नहीं की गई। परन्तु सुशीला ने काम चौपट कर दिया। वह एक एक वस्तु को अभिमान से देखती थी; जैसे किसी मजदूर को राजाओं की पोशाक पहन कर अभिमान होता है, उसी प्रकार सुशीला के पाँव पृथ्वी पर न पड़ते थे। मिसिज़ हरद्वारीलाल पर इसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। वह समझतो थी, सुशीला कोई समझदार स्त्री होगी, परन्तु इस ओछेपन ने उसका विचार रद्द कर दिया। यहाँ तक कि उसे खाने में भी कुछ स्वाद न आया। भाजियाँ अच्छी थीं, परन्तु घी के बाहुल्य ने उनका स्वाद विगाड़ दिया। उसको ऐसा प्रतीत हुआ कि इनको कभी घी खाने का अवसर नहीं मिला। आज पहली बार इन्हें घी मिला है, इसलिए अगली-पिछली कसर निकाल रहे हैं। उसका जी उकता गया। परन्तु उसने मस्तक पर बल न आने दिया। जाते समय बोली—“बहन जी! आपका रहन-सहन देखकर चित्त प्रसन्न हो गया है। आप ऐसी सज-धज से रहती हैं, मुझे यह पता न था। और खाना खाकर तो मन प्रसन्न हो गया। मैं किस मुहँ से आपको धन्यवाद दूँ। प्रत्येक पदार्थ ऐसा स्वादिष्ट बना था कि मैं आवश्यकता से अधिक खा गई।”

सुशीला की आँखें चमकने लगीं। उनका खर्च करना अकारण न गया। होंठों पर मुस्कराहट आ गई, परन्तु उसे दबाकर बोली, “यह आपका खयाल है, नहीं तो मेरा भोजन तो सुदामा के सत्तू हैं। यह आपकी दया है, जो पसन्द कर लिया। कभी फिर भी दर्शन दीजियेगा ?”

मिसिज़ हरद्वारीलाल परमेश्वर से प्रार्थनाएँ कर रही थीं कि कहीं जल्द छुटकारा हो, परन्तु प्रत्यक्ष में मुस्करातो हुईं बोलीं—“बहनजी! क्या कहूँ ?

आपके सद्व्यवहार ने मुझ पर जादू कर दिया है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि अब आपके बिना मेरा निर्वाह न होगा। मैं आप के यहाँ प्रायः आती-जाती रहूँगी। पहली बार की शिक्षक थी, सो निकल गई। अब क्यों न आऊँगी ?”

यही शब्द थे जिनके लिए सुशीला के कान आतुर और अर्धार हो रहे थे। यही शब्द थे जिनके लिए सुशीला ने पाँच-छः सौ रुपया खर्च कर दिया था और पन्द्रह दिन चैन से न सोई थी। वह आनन्द में विह्वल हो गई, जिस प्रकार हरिण वीणा को सुन कर मस्त हो जाता है।

इसके पश्चात् सुशीला की अवस्था में परिवर्तन हुआ। धनीराम प्रति दिन टेनिस खेलने जाया करते थे। वहाँ मिसिज़ हरद्वारीलाल और कुछ अन्य स्त्रियाँ भी आया करती थीं। उनके क्रहक्रहे क्लब की रौनक थे। लाला धनीराम की इच्छा थी कि किसी तरह सुशीला भी उनके साथ टेनिस का रैकट लेकर साड़ी पहन कर क्लब में चले। जब वहाँ सेठ हरद्वारीलाल और दूसरे सुहृद-मित्र अपनी स्त्रियों के साथ जाते तो धनीराम के कलेजे पर छुरियाँ चल जाती थीं। वे वहाँ अकेले जाने में अपमान समझते थे।

अब धनीराम ने अपनी स्त्री को उकसाना आरंभ किया ! क्या बेहूदगी है, सायकल को खेल-कूद आवश्यक है। परन्तु तुम समझदार होकर भी लोक-लज्जा में फँसी रहती हो। एक दिन चल कर देखो तो सही, चित्त प्रसन्न हो जायगा। मिसिज़ हरद्वारीलाल, मिसिज़ मंछिंदा, मिसिज़ चोपड़ा सब आती हैं, परन्तु तुम घूँघट से मुँह ही बाहर नही निकालतीं। मुझे बहुत लज्जित होना पड़ता है। इसलिए तुम्हें चाहिए कि क्लब की मेम्बर बन जाओ, यह व्यायाम का व्यायाम है, खेल-कूद का खेल-कूद। एक बार जाकर तुम्हारा मन वापस आने को न चाहेगा। सुशीला ने कुछ दिन तक इन सब बातों की कुछ भी परवा न की, परन्तु अंत में उसे मानना ही पड़ा। क्लब की मेम्बर बन गई। यहाँ उसने नई नई बातें सीखीं। टेनिस खेलना तो केवल एक बहाना था, उद्देश्य यह था कि “सभ्य सोसाइटी” के साथ मेछ-जोल बढ़े। वहाँ जितनी मेम्बर स्त्रियाँ थीं, सब की सब धनाढ्य और कुलीन थीं। उनकी वेष-भूषा स्वभावतः बड़े ठाट-बाट की थी। सुशीला अपनी दृष्टि में आप गिरने लगी। जब तक कभी कभी मेल-मिलाप होता था, तब तक कुशल था, परन्तु प्रति दिन क्लब में जाना तो अंधेर हो

गया। अब नित नये वस्त्र तैयार होने लगे, और वह भी बहुमूल्य और भङ्कीले। यह कैसे हो सकता था कि वह सामान्य वस्त्र पहन कर बाज़ार से निकल जाये? उस अवस्था में लोग क्या कहते? अवश्य ही उसकी ओर उँगलियाँ उठने लगतीं; यह असह्य था। इसमें सन्देह नहीं कि खर्च का बोझ सिर तोड़े डालता था। बैंक का, सेठ हरद्वारीलाल का, और कुछ दूसरे साहूकारों का ऋण दिन पर दिन बढ़ रहा था। परन्तु इसकी क्या परवा थी, इससे आन-बान तो न घटती थी। सुनहरी गुरगाबी और रेशमी साड़ी के बिना बाहर निकलना उसके लिए नितान्त असंभव था। वह इसे असभ्यता और निर्लज्जता समझने लगी थी। समय की बात है, वही सुशीला जो प्रातःकाल अपने हाथ से रोटी बनाती, दोपहर को चर्खा कातती, और साँझ को पति की राह देखा करती थी, अब इन कामों को अपमान का कारण समझने लगी। एक बार धनीराम ज्वर से पीड़ित थे, तब सुशीला ने अपने बुंदे बेच दिये थे, उस समय वह असभ्य और मूर्खा थी। परन्तु नवीन सभ्यता में जब धनीराम एक बार सन्निपात से मरणासन्न हो गये थे तो सुशीला ने पति से कहा—“मेरा प्रबन्ध क्या होगा? लाख बार कहा था कि जिंदगी का बोमा करवा लो, परन्तु आपने परवा न की। जीवन का क्या भरोसा है? अपनी ओर से सावधान रहना चाहिए।” अब वह सभ्यता के आकाश में उड़ती थी, वह जीवन और लोकाचार को एक ही वस्तु समझने लगी थी।

(६)

एक वर्ष बीत गया। लाला धनीराम का नाम नगर के रईसों में शुमार होने लगा। परन्तु उनकी आय घटने लगी। वे दफ्तर में अब भी जाते थे। बाहर से काम अब भी आता था, परन्तु उस ओर उनकी प्रवृत्ति नहीं थी। वे दफ्तर में इसलिए नहीं जाते थे कि काम करें, वरन् इसलिए कि लोगों को पता लगेगा कि मैं दफ्तर जा रहा हूँ। वे इसमें अपनी बड़ाई समझते थे। काम में उनका मन न लगता था। कई बार तो उन्होंने विचार किया कि अब इस धन्धे को छोड़ कर कोई और काम आरम्भ करें जो ‘पोज़ीशन’ के अनुकूल हो। उनकी इस उपेक्षा से नौकरों को लाभ पहुँच गया। कभी वह दिन थे

कि वे एक एक पैसे की नाँच-पड़ताल करते थे, उस समय वे मूर्ख और निबुद्धि थे। एक यह दिन आया कि उन्होंने लेखा-पत्रा तक देखने की सौगन्ध खा ली। अब उनकी आँखें खुल गई थीं और वे प्रकाश में पहुँच चुके थे। वही प्रकाश जिससे बुद्धि नष्ट हो जाती है और दीर्घदर्शिता का दीपक बुझ जाता है। जहाँ लोकाचार का पक्षी अपने भयानक पंख फैलाये हुए प्रकट होता है, और 'लोग क्या कहेंगे' का विचार हृदय पर विनाश की छाप लगा देता है। इसी प्रकार समय बीतता गया, और धनीराम अपने काम की उपेक्षा करते गये।

एक दिन धनीराम अपनी बैठक में बैठे क्लब जाने की तैयारियाँ कर रहे थे कि लाला नेकीराम ने आकर कहा, "मुझे बड़ी ज़रूरत है, मेरा रुपया चुका दीजिए।"

लाला नेकीराम और लाला धनीराम में गहरी मैत्री थी। लाला धनीराम उनके यहाँ से प्रायः रुपया मँगवा लिया करते थे। परन्तु इस समय उनका आना उनको विप समान लगा। मगर फिर भी धीरज से बोले, "कितना रुपया है?"

"पच्चीस सौ के लगभग।"

धनीराम के कलेजे में किसी ने छुरा मार दिया। उन्होंने लाला नेकीराम की ओर इस तरह देखा, मानों उसे खा जायेंगे "क्या पच्चीस सौ?"

लाला नेकीराम ने घबरा कर उत्तर दिया, "जी हाँ, पच्चीस सौ।"

"कल हिमाब भेज देना। मैं अठवारे के अंदर अंदर रुपया चुका दूँगा।"

कहने को तो यह शब्द कह दिये, परन्तु सोचने लगे कि पच्चीस सौ कहाँ से आयेगा। प्रेस से जो कुछ आता है उससे अधिक खर्च हो जाता है। घर में एक पैसा नहीं, यह रकम कहाँ से निकलेगी। सेठ हरद्वारीलाल से माँग लें। परन्तु उन्होंने भी एक दिन रुपये की वापसी का इशारा किया था। वे अब और न देंगे। बैंक से काम चल सकता है, परन्तु मैनेजर से बिगड़ी हुई है। उससे कैसे कहूँ? निराशा ने अन्धकार फैला दिया। एकाएक उनके हृदय में किसी मनोहारी विचार ने चुटकी ली। अन्धकार में प्रकाश हो गया। भक्त स्वरूप सिंह से काम निकल सकता है। लाला धनीराम के मुख-मण्डल पर आशा की एक रेखा झलक उठी जैसे रात को जुगुनू चमकता है। इतने में नौकर ने ढाक

लाकर सामने रख दी। लाला धनीराम ने साधारणतया देखा और एक पत्र को जल्दी से खोला। पत्र में लिखा था—

मेरे प्यारे मिस्टर भट्टा !

मैं अत्यन्त शोक से लिखता हूँ, कि मुझे आज-कल रुपये की बहुत जरूरत है। इसलिए कृपा करके एक हजार रुपया ब्याज समेत देने का प्रबन्ध करें। मुझे यह लिख कर अति लज्जित होना पड़ा है, परन्तु विवश हूँ। नहीं तो श्रीमान् को कष्ट न देता। आपके सम्मुख आकर कहने में लज्जा आती है। आशा है, आप बुरा न मानेंगे।

—आपका शुभचिंतक

भक्त स्वरूपसिंह।

लाला धनीराम को ऐसा प्रतीत हुआ मानों आकाश से कोई गोला सिर पर गिर पड़ा हो। उनके शरीर से पसीना छूटने लगा। आराम कुर्सी पर लेट कर चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। परन्तु कोई सहारा न दिखाई दिया। घबराये हुए प्रेस में पहुँचे और मैनेजर से बोले, “प्रेस के हिसाब में कोई रुपया जमा है ?”

मैनेजर उनके इस समय आने से ही हैरान हो रहा था, इस प्रश्न से और भी घबरा गया, और किंकर्तव्यविमूढ़-या होकर बोला, “नहीं।”

“इतनी आमदनी होती है, कहाँ जाती है ?”

“जो कुछ आता है, आप घर मँगवा लेते हैं। बैंक में कहाँ से भेजें ? नौकरों को वेतन भी तो समय पर नहीं मिलता !”

और समय होता तो धनीराम तफ्फाल खाते की पढ़ताल करते, परन्तु अब उनमें यह साहस न रहा था।

सहायता के लिए अपने मित्रों के पास पहुँचे, परन्तु किसी से काम न बना। धनीराम चिन्ता-सागर में गोते खाने लगे। उन्हें यह आशा न थी। निराश होकर वापस लौट आये, और अखिरे बन्द करके पलङ्ग पर लेट गये क्लब जाने का विचार रह गया।

घड़ी ने छै बजाये।

सुशीला अपनी बहुमूल्य साड़ी पहने रैकट हाथ में लिये निकली, और बोली, “डियर ! चलो, क्लब का समय हो गया।”

यही शब्द धनीराम अपनी स्त्री के मुख से प्रति दिन सुनते थे, और सुनकर लट्टू हो जाते थे, परन्तु आज उनको ऐसा प्रतीत हुआ जैसे इनमें लाल मिचें घुली हैं। उन्होंने अनमने से होकर कहा, 'मेरा चित्त कुछ स्वस्थ नहीं है, तुम हो आओ, मैं न जाऊँगा।'

सुशीला डर गई। उसमें दिखावा, स्वार्थ और बनाव-सिंगार के व्यसन आ गये थे, परन्तु पति-प्रेम अभी शेष था। वह इस अमूल्य रत्न से अभी वंचित नहीं हुई थी। उसने झुककर पति के मस्तक पर हाथ रखा और बोली—'क्यों, क्या है?'

धनीराम को इन सहानुभूति के शब्दों ने हिला दिया। उनकी आँखों में आँसू आ गये। वे लेटे हुए थे, उठ बैठे और बोले, 'सुशीला ! तुमसे क्या कहूँ ? मैंने अपने पाँव पर आप कुल्हाड़ी मार ली। मैंने अपने आपको नष्ट कर लिया। मैंने धनवानों की मित्रता के लिए वह किया, जो मेरी शक्ति से बाहर था। उनके मुख से अपनी प्रशंसा के दो शब्द सुनने की इच्छा में मैंने अपना घर-बार लुटा दिया। मुझे याद है, मैं कैसा परिश्रमी, कितना पुरुषार्थी, कितना काम करनेवाला था। मेरी ओर देख कर लोगों में जोश आ जाता था। मैं अपनी चादर देख कर पाँव पसारा करता था। परन्तु धनवान मित्रों के साथ पाँव उठाने के विचार ने मुझे अन्धा कर दिया। मैंने अपनी बिसात से बढ़ कर खर्च किया, और इतना न सोचा कि इसका परिणाम कितना भयानक, कैसा विनाशकारी हो सकता है। उस समय मैं समझता था कि धनवान मित्र मेरे काम आयेंगे, और आवश्यकता पड़ने पर मेरा गिरता हुआ घर थाम लेंगे। परन्तु आज पता लगा, कि यह मेरी भूल थी। मुझे सोचना चाहिए था कि आदमी को अपने बराबर के आदमी के साथ मिलना चाहिए। अपने से ऊँचे आदमी से मित्रता का निर्वाह कठिन है। आज मुझे पर विपत्ति आई है, परन्तु इससे मेरी आँखें खुल गई हैं। मुझे निश्चय हो गया है कि इस लोकाचार को छोड़े बिना शान्ति न होगी। मैं मानता हूँ कि तुम इस कुपथ पर आने के विरुद्ध रहें। मैंने ही तुम्हें विवश किया था। इसका पाप मेरे सिर पर है। परन्तु अब वही मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि इस बीमारी से बचो, नहीं तो हमारा बचाव नहीं होगा। मैं तुमको अब फिर वही प्रातःकाल की दूध दुहनेवाली, दोपहर को रोटी पकानेवाली, तीसरे पहर चर्खा कातनेवाली, सीधी-सादी भोली-

भाली गाँव की लड़की देखना चाहता हूँ। मेरो इच्छा है कि अब फिर वही सादगी का युग आये, वही निर्मल प्रेम का स्रोत बहे, वही बोते हुए दिन वापस आयें। मैं मोटर नहीं चाहता; बड़ी बड़ी सजी हुई कोठियाँ नहीं चाहता, क्लब-घर नहीं चाहता, मितव्ययिता और परिश्रम का जीवन चाहता हूँ। मुझे निराश न करना, नहीं मेरा दिल टूट जायगा।”

(७)

सुशीला की आँखें खुल गईं। इस जगत दिखाने का परिणाम ऐसा दुःख-जनक होगा, उसे इसकी स्वप्न में भी आशंका नहीं थी। वह रोती हुई पति के पाँव से लिपट गई और बोली, “आप जो चाहते हैं, मैं वही करूँगी। मैं सब कुछ सह सकती हूँ, पर आपके मुख पर चिन्ता नहीं देख सकती।”

धनीराम का मुख गुलाब के फूल के समान खिल गया। उन्होंने पत्नी को उठा कर गले से लगा लिया, और बोले, “अब मुझे कोई चिन्ता नहीं।”

सुशीला ने कुर्सी पर बैठ कर चिन्तित भाव से कहा, “यह सब छापाखाना बेच क्यों न दिया जाय?”

‘इसके सिवाय उपाय ही क्या है?’

‘ऋण उतर जायेगा?’

‘नहीं।’

‘फिर शेष के लिए क्या करोगे?’

‘प्रोनोट लिख दूँगा।’

‘तो जल्दी करो। अब इस शहर में रहने को जी नहीं चाहता।’

धनीराम घबराये हुए थे। वह चाहते थे कि जितनी जल्दी इस माया-जाल से छुटकारा हो, उतना ही अच्छा है। उन्होंने अपने प्रेस और दूसरी चीजों को बेचना आरम्भ कर दिया। रुपयों की चीजें कौड़ियों में निकल गईं, परन्तु ऋण उतर गया। इसके लिए सुशीला के आभूषण तक बिक गये। परन्तु उसने परवा न की।

इसके एक मास पश्चात् नौकरी की खोज में धनीराम देहली को रवाना हुए। अब रोहतक में रहना असह्य हो गया था।